

सुविचार

बड़े सपने देखो, छोटी शुरुआत करो और आगे बढ़ते रहो।

संपादकीय

लोकतंत्र में संवाद, असहमति और नागरिक जिम्मेदारी

लोकतंत्र केवल चुनावों के माध्यम से सरकार चुनने की व्यवस्था नहीं है, बल्कि यह विचारों के आदान-प्रदान, मतभेदों के सम्मान और नागरिकों की सक्रिय भागीदारी पर आधारित एक जीवंत व्यवस्था है। किसी भी लोकतांत्रिक समाज की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वहाँ संवाद की संस्कृति कितनी मजबूत है, असहमति को कितना सम्मान मिलता है और नागरिक अपने अधिकारों के साथ-साथ अपने कर्तव्यों का कितना ईमानदारी से पालन करते हैं। आज जब समाज तेजी से बदल रहा है और सूचना के अनेक माध्यम हमारे जीवन का हिस्सा बन चुके हैं, तब लोकतंत्र के इन तीनों स्तंभों का महत्व पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है। संवाद लोकतंत्र की आत्मा है। समाज में संवाद के बिना, विचारधाराओं और समुदायों के बीच खूना, शालीन और तथ्यपरक संवाद ही लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाता है। संसद से लेकर ग्राम सभा तक, मीडिया से लेकर शैक्षणिक संस्थानों तक और सामाजिक संगठनों से लेकर आम नागरिकों तक—हर स्तर पर संवाद की स्वस्थ परंपरा आवश्यक है। संवाद के माध्यम से समस्याओं का समाधान खोजा जाता है, नीतियों में सुधार होता है और जनता की अपेक्षाएं शासन तक पहुंचती हैं। जब संवाद कमजोर पड़ता है, तब गलतफहमियां बढ़ती हैं, सामाजिक तनाव पैदा होता है और लोकतांत्रिक संस्थाओं पर विश्वास प्रभावित हो सकता है।

लोकतंत्र की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता है—असहमति का सम्मान। किसी भी लोकतांत्रिक समाज में सभी लोगों का एक ही विचार होना संभव नहीं है और न ही यह आवश्यक है। अलग-अलग दृष्टिकोण समाज को नए विचार, बेहतर नीतियां और व्यापक समाधान प्रदान करते हैं। इसलिए असहमति को विरोध या शत्रुता के रूप में नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक विमर्श के एक स्वाभाविक और रचनात्मक तत्व के रूप में देखा जाना चाहिए। इतिहास गवाह है कि अनेक महत्वपूर्ण सामाजिक और राजनीतिक सुधार विचार-विमर्श और मतभेदों के माध्यम से ही संभव हुए हैं। इसलिए असहमति को सुनना, समझना और उसका सम्मान करना लोकतांत्रिक परिपक्वता का परिचायक है।

हालाँकि असहमति का अर्थ अराजकता, हिंसा, घृणा या कानून की अहंहेलना नहीं है। लोकतंत्र नागरिकों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देता है, लेकिन उसके साथ संवैधानिक मर्यादाओं और दूसरों के अधिकारों का सम्मान भी अपेक्षित है। मतभेद यदि संयम, तर्क और संवैधानिक तरीकों से व्यक्त किए जाएं, तो वे लोकतंत्र को मजबूत करते हैं। वहीं, यदि संवाद की जगह कटुता, अफवाह और हिंसा ले ले, तो समाज में अविश्वास और विभाजन बढ़ सकता है। इसलिए लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिए शांति, संयम और पारस्परिक सम्मान अनिवार्य हैं।

इन परिस्थितियों में नागरिक जिम्मेदारी का महत्व और बढ़ जाता है। लोकतंत्र में नागरिक केवल मतदाता नहीं, बल्कि व्यवस्था के सक्रिय सहभागी होते हैं। मतदान करना, कानून का पालन करना, करों का ईमानदारी से भुगतान करना, सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा करना, पर्यावरण संरक्षण में योगदान देना और सामाजिक सद्भाव बनाए रखना—ये सभी नागरिक जिम्मेदारी के महत्वपूर्ण आयाम हैं। इसी प्रकार तथ्यपरक जानकारी प्राप्त करना, अफवाहों से बचना और बिना सत्यापन के भ्रामक सूचनाएं साझा न करना भी आज के डिजिटल युग में एक बड़ी जिम्मेदारी बन गई है।

सोशल मीडिया ने नागरिकों को अपनी बात रखने का व्यापक मंच दिया है। यह लोकतंत्र के लिए एक महत्वपूर्ण अवसर है, क्योंकि अब आम नागरिक भी नीति, समाज और शासन से जुड़े मुद्दों पर अपनी राय व्यक्त कर सकते हैं। लेकिन इसके साथ यह चुनौती भी जुड़ी है कि गलत जानकारी, भ्रामक प्रचार और घृणास्पद सामग्री समाज में भ्रम और तनाव पैदा कर सकती है। इसलिए डिजिटल माध्यमों का जिम्मेदारीपूर्वक उपयोग करना, विश्वसनीय स्रोतों पर भरोसा करना और सभ्य भाषा में अपनी बात रखना समय की आवश्यकता है।

लोकतंत्र की मजबूती केवल सरकारों की जिम्मेदारी नहीं है। राजनीतिक दलों, मीडिया, न्यायपालिका, शैक्षणिक संस्थानों, नागरिक संगठनों और प्रत्येक नागरिक की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका है। राजनीतिक दलों को स्वस्थ बहस और जनहित को प्राथमिकता देनी चाहिए। मीडिया का दायित्व है कि वह तथ्यपरक, निष्पक्ष और जिम्मेदार पत्रकारिता को बढ़ावा दे। शैक्षणिक संस्थानों को युवाओं में संवैधानिक मूल्यों, वैज्ञानिक सोच और संवाद की संस्कृति विकसित करनी चाहिए। वहीं नागरिकों को भी अपने अधिकारों के साथ कर्तव्यों के प्रति समान रूप से सजग रहना होगा।

चारों तरफ शोर शराबा यहाँ



चारों तरफ शोर शराबा यहाँ
फिर भी तन्हाइयों का शिकार हर ईंसान यहाँ
दूर तक फैली लंबी दौड़ती सड़के यहाँ
फिर भी अनदेखी सफर पर चल रहा हर शख्स यहाँ
अंतिम सांस तक मंजिल की तलाश करता ईंसान
घर की दहलीज से सड़क के उसे मोड़ तक
चलता फिरता कारोबार करता ईंसान
एहसास को अनदेखा कर मशीन बन रहा हर ईंसान
-लेखिका अर्चना तिवारी

हिंदुस्तान एकता कार्यालय

प्रिय पाठकगण,

यदि आप हिन्दुस्तान एकता में अपनी कोई रचना, लेख, कविता, कहानी, राज्ञल, समीक्षा, संस्मरण, जीवनी, बाल स्तंभ व महिला स्तंभ आदि प्रकाशित करवाना चाहते हैं तो हर महीने की 2, 9, 16, 23 तारीख तक इस ईमेल पर भेजें तथा देश के हर कोने तक अपनी आवाज को बुलंद करें।

ईमेल: hindustanektaliterature@gmail.com

नीट के बवाल के बीच एक बड़ा सवाल: डॉक्टर बनने की राह में संवेदनाएं कहाँ खो जाती हैं?



देश में जब भी नीट (NEET) परीक्षा होती है, उसके बाद केवल परिणामों की नहीं, बल्कि पूरी व्यवस्था की चर्चा शुरू हो जाती है। कभी पेपर लीक, कभी परीक्षा की पारदर्शिता, कभी आरक्षण, कभी कट-ऑफ और कभी लाखों विद्यार्थियों पर पड़ने वाले मानसिक दबाव को लेकर बहस छिड़ जाती है। हर वर्ष करोड़ों सपनों का भार इस एक परीक्षा पर टिका होता है। माता-पिता अपनी वषों की बचत दौंव पर लगा देते हैं, विद्यार्थी दिन-रात एक कर देते हैं और समाज उन सफल अभ्यर्थियों को भविष्य का जीवनरक्षक मानकर गर्व महसूस करता है। लेकिन इन तमाम बहसों के बीच एक ऐसा प्रश्न है, जो शाायद सबसे महत्वपूर्ण है, फिर भी सबसे कम पूछा जाता है। आखिर यही बच्चे, जो डॉक्टर बनने का सपना लेकर मेडिकल कॉलेजों में प्रवेश करते हैं, उनमें से कुछ आगे चलकर ऐसे डॉक्टर क्यों बन जाते हैं जिनके व्यवहार को लेकर समाज में असंतोष दिखाई देता है? क्यों कभी-कभी मरीज को लगता है कि उसके सामने बैठा व्यक्ति पहले डॉक्टर नहीं, बल्कि एक व्यवसायी है? यह प्रश्न किसी पूरे चिकित्सक समुदाय पर आरोप नहीं, बल्कि उस

असली मुद्दों से भटकता शिक्षा का संकट



भा रत में जब भी कोई बड़ा जनॉदोलन होता है, उसके पीछे कोई वास्तविक पीड़ा होती है। कहीं बेरोजगारी, कहीं महंगाई, कहीं किसानों की समस्याएँ और कहीं शिक्षा व्यवस्था की खामियाँ। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि समय बीतते-बीतते वास्तविक मुद्दा अक्सर राजनीतिक हितों, वैचारिक संघर्षों और प्रचार की भाँड में खो जाता है। सबसे अधिक नुकसान उस वर्ग का होता है जिसके नाम पर आंदोलन शुरू हुआ था। शिक्षा से जुड़े आंदोलनों में यह नुकसान सीधे विद्यार्थियों के भविष्य पर पड़ता है।

छिछले कुछ समय से शिक्षा और प्रतियोगी परीक्षाओं को लेकर देश में जो बहस चल रही है, उसने अनेक प्रश्न खड़े किए हैं। अलग-अलग राजनीतिक दल, सामाजिक संगठन, छात्र समूह, अभिनेता, सोशल मीडिया के प्रभावशाली चेहरे और वैचारिक समूह अपनी-अपनी व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं। आम नागरिक के लिए यह समझना कठिन हो जाता है कि सच क्या है और प्रचार क्या है। परिणाम यह होता है कि असली मुद्दा पीछे छूट जाता है और राजनीतिक लाभ-हानि का खेल आगे आ जाता है। लोकतंत्र में विरोध करना नागरिक का अधिकार है। यदि किसी परीक्षा में अनियमितता हुई है, यदि पेपर लीक हुआ है, यदि छात्रों के साथ अन्याय हुआ है या यदि शिक्षा व्यवस्था में गंभीर कमियाँ हैं, तो उन पर खुलकर चर्चा होनी चाहिए। सरकार की जवाबदेही तय होनी चाहिए और दोषियों के विरुद्ध निष्पक्ष कार्रवाई भी होनी चाहिए। लेकिन जब आंदोलन का केंद्र विद्यार्थियों की समस्याओं से हटकर राजनीतिक शक्ति प्रदर्शन बन जाता है, तब सबसे अधिक नुकसान उन्हीं छात्रों का होता है जिनके भविष्य की रक्षा के नाम पर आंदोलन शुरू किया गया था।

भारत की शिक्षा व्यवस्था लंबे समय से अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है। प्रतियोगी परीक्षाओं में बार-बार पेपर लीक होना, भर्ती प्रक्रियाओं में देरी, परिणामों में अनिश्चितता, बढ़ती कोचिंग संस्कृति, मानसिक तनाव, आर्थिक असमानता और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक असमान पहुँच—ये सभी वास्तविक समस्याएँ हैं। लाखों युवा वषों तक तैयारी करते हैं। परिवार अपनी बचत खर्च कर देते हैं। कई विद्यार्थी आर्थिक और मानसिक दबाव के बीच अपना भविष्य तलाशते हैं। ऐसे में यदि परीक्षा की विश्वसनीयता पर प्रश्न उठते हैं, तो स्वाभाविक रूप से समाज में आक्रोश पैदा होता है।

दुर्भाग्य यह है कि इन मूल समस्याओं के समाधान पर गंभीर राष्ट्रीय चर्चा बहुत कम दिखाई देती है। कुछ दिनों तक मीडिया में शोर होता है, राजनीतिक बयान आते हैं, आरोप-प्रत्यारोप चलते हैं और फिर कोई नया मुद्दा पुराने विषय को ढक देता है। जिन विद्यार्थियों के लिए न्याय की माँग उठी थी, वे फिर उसी अनिश्चितता के साथ अपनी तैयारी में लग जाते हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा को राजनीति का हथियार नहीं बल्कि राष्ट्र निर्माण का आधार माना जाए। किसी भी सरकार की सफलता



पानी अमूल्य है, जीवन के समान मूल्यवान है। यह सृष्टि का आधार, प्रकृति की अनुपम धरोहर और ऐसी संजीवनी संपदा है, जिसके प्रत्येक कण में जीवनदायी शक्ति समाई हुई है। जहाँ जल नहीं है, वहाँ जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जल केवल मनुष्य की ही नहीं, बल्कि समस्त जीव-जंतुओं, वनस्पतियों और पर्यावरण के अस्तित्व का आधार है। इसलिए जल को धरती की सबसे अमूल्य निधि कहा जाता है। एक समय था जब हमारे दादा-दादी ने नदियों

व्यवस्था की पड़ताल है जो एक संवेदनशील विद्यार्थी को कभी-कभी संवेदनहीन पेशेवर में बदल देती है। यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि देश के अधिकांश डॉक्टर आज भी पूरी ईमानदारी, निष्ठा और करुणा के साथ अपनी सेवाएँ दे रहे हैं। कोरोना महामारी के दौरान हमने देखा कि हजारों चिकित्सकों ने अपनी जान की परवाह किए बिना मरीजों की सेवा की। दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित संसाधनों के बीच कार्य करने वाले डॉक्टर आज भी चिकित्सा सेवा की गरिमा बनाए हुए हैं। इसलिए कुछ लोगों की गलतियों के आधार पर पूरे चिकित्सक समुदाय का मूल्यांकन करना अन्याय होगा। लेकिन यदि समाज में डॉक्टरों के प्रति अविश्वास बढ़ रहा है, तो उसके कारणों पर गंभीरता से विचार करना भी उतना ही आवश्यक है। समस्या की शुरुआत मेडिकल कॉलेज से भी पहले हो जाती है। आज डॉक्टर बनने की तैयारी एक प्रतियोगी उद्योग बन चुकी है। कोचिंग संस्थानों में विद्यार्थियों को सफलता का अर्थ केवल रैंक, अंक और सीट समझाया जाता है। चिकित्सा को सेवा नहीं, बल्कि उपलब्धि और प्रतिष्ठा का माध्यम मानने की मानसिकता धीरे-धीरे विकसित होने लगती है। जब लक्ष्य केवल किसी भी कीमत पर मेडिकल सीट प्राप्त करना रह जाए, तब संवेदनशीलता, सामाजिक जिम्मेदारी और मानवीय मूल्यों की चर्चा पीछे छूट जाती है।

आरक्षण, समान अवसर और सामाजिक न्याय जैसे विषय भी गंभीर विमर्श की माँग करते हैं। इन मुद्दों पर भावनात्मक नारेबाजी के बजाय संविधान, न्यायपालिका, सामाजिक वास्तविकताओं और शिक्षा के अवसरों को ध्यान में रखकर संतुलित चर्चा होनी चाहिए। समाज को बाँटने वाली भाषा किसी भी समाज का समाधान नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक विद्यार्थी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और निष्पक्ष प्रतियोगिता का अवसर मिले।

सरकार की भी यह जिम्मेदारी है कि किसी भी विवाद को समय रहते संवाद और संवेदनशीलता से सुलझाए। जब प्रारंभिक स्तर पर बातचीत, पारदर्शिता और भरोसे का वातावरण बनाया जाता है, तब आंदोलन उग्न होने की संभावना कम हो जाती है। लोकतंत्र केवल कानून लागू करने में नहीं चलता, बल्कि विश्वास कायम करने से भी चलता है। विद्यार्थियों के साथ संवाद, अभिभावकों की नि्तिताओं को सुनना और समयबद्ध निर्णय लेना सरकार की प्राथमिक जिम्मेदारी होनी चाहिए।

उधर विपक्ष की भूमिका भी केवल विरोध तक सीमित नहीं होनी चाहिए। यदि वह वास्तव में युवाओं के हितैषी होने का दावा करता है, तो उसे ठोस नीति सुझाव देने चाहिए, शिक्षा सुधार पर राष्ट्रीय सहमति बनाने का प्रयास करना चाहिए और किसी भी छात्र आंदोलन को राजनीतिक मंच में बदलने से बचना चाहिए। लोकतंत्र में सशक्त विपक्ष आवश्यक है, लेकिन उसका दंडेय समाधान होना चाहिए, केवल सत्ता परिवर्तन नहीं।

सोशल मीडिया ने स्थिति को और जटिल बना दिया है। अधूरी जानकारी, पुराने वीडियो, भ्रामक संदेश और भावनात्मक पोस्ट कुछ ही घंटों में लाखों लोगों तक पहुँच जाते हैं। अनेक लोग बिना तथ्य जाँचे उन्हें आगे बढ़ा देते हैं। इससे भ्रम, अविश्वास और सामाजिक तनाव बढ़ता है। युवाओं को विशेष रूप से डिजिटल साक्षरता अपनानी होगी और किसी भी सूचना को साझा करने से पहले उसकी सत्यता की पुष्टि करनी होगी। आज आवश्यकता है कि छात्र स्वयं भी अपनी प्राथमिकताओं को स्पष्ट रखें। उनका लक्ष्य शिक्षा, रोजगार और भविष्य होना चाहिए, न कि किसी राजनीतिक दल का प्रचार। लोकतंत्र में अपनी बात रखना आवश्यक है, लेकिन किसी के हाथ का मोहरा बन जाना बुद्धिमानी नहीं है। शांतिपूर्ण, संवैधानिक और तथ्य आधारित आंदोलन ही समाज में सकारात्मक परिवर्तन ला सकते हैं। अभिभावकों की भूमिका भी पहले से अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। उन्हें केवल बच्चों की पढ़ाई पर ही नहीं, बल्कि उनके मानसिक स्वास्थ्य, डिजिटल गतिविधियों और सामाजिक वातावरण पर भी ध्यान देना होगा। भावनात्मक उकसावे के दौर में विवेकपूर्ण निर्णय लेना सबसे बड़ी आवश्यकता है। बच्चे यदि निराशा, क्रोध या भ्रम में कोई गलत कदम उठा लेते हैं, तो उसकी भरपाई किसी राजनीतिक दल, संगठन या नेता द्वारा नहीं की जा सकती।

(यह लेखिका के निजी विचार हैं)

इसके बाद यदि कोई छात्र अत्यधिक महँगे निजी मेडिकल कॉलेज में प्रवेश लेता है, जहाँ शिक्षा पर लाखों नहीं बल्कि करोड़ों रुपये तक खर्च होते हैं, तो आर्थिक दबाव भी उसके भविष्य को प्रभावित करता है। कई परिवार कर्ज लेकर अपने बच्चों को डॉक्टर बनाते हैं। ऐसे में कुछ लोगों के मन में यह भावना जन्म लेती है कि अब इस निवेश की भरपाई करनी है। यह सोच चिकित्सा की मूल भावना के विपरीत है, लेकिन शिक्षा के बढ़ते व्यावसायीकरण ने इस मानसिकता को कहीं न कहीं जन्म दिया है।

मेडिकल शिक्षा स्वयं भी अत्यंत कठिन है। वषों तक लगातार अध्ययन, इंटरशिप की लंबी ड्यूटी, रातभर जागकर काम करना, गंभीर मरीजों से रोज़ सामना होना, मानसिक तनाव और कई बार कठोर प्रशिक्षण—यह सब एक युवा छात्र के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। यदि इस दौरान उसे भावनात्मक सहयोग, नैतिक चिकित्सा और मानवीय व्यवहार का पर्याप्त प्रशिक्षण न मिले, तो धीरे-धीरे मरीज एक इंसान नहीं, बल्कि एक केस बनकर रह जाता है।

सरकारी अस्पतालों की स्थिति भी किसी से छिपी नहीं है। एक-एक डॉक्टर को सैकड़ों मरीज देखने पड़ते हैं। सीमित संसाधनों, दवाओं की कमी और प्रशासनिक दबाव के बीच हर मरीज को पर्याप्त समय देना कई बार संभव नहीं होता। दूसरी ओर निजी अस्पतालों में कई स्थानों पर आय, पैकेज और लक्ष्य आधारित कार्य

जियो और जीने दो: एक बेहतर दुनिया का पासवर्ड



हम सबह आँख खोलते हैं तो सबसे पहले मोबाइल की स्क्रीन। रात को आँख बंद करते हैं तो आखिरी बार फिर वही स्क्रीन। बीच के 16-18 घंटे हम एक ऐसी रस दौड़ रहे हैं जिसका फिनिश लाइन किसी को पता नहीं। बड़ी गाड़ी, बड़ा घर, बड़ा पद, ज्यादा लाइक्स, ज्यादा फॉलोअर्स — इस 'बड़ा' के चक्कर में हम 'छोटी' खुशियाँ भूल गए हैं। बच्चे की पहली तुलनालह, शाम की चाय पर माँ से दो बातें, बारिश में भीगते हुए बचपन की याद, छत पर लेटकतर तारों को गिनना, ये सब अब "टाइम वेस्ट" लगने लगा है। और इसी शोर में कहीं बहुत पीछे एक आवाज़ दब गई है। वो आवाज़ सदियों पुरानी है, हमारे दादा-परदादा हमें सिखा गए थे। बहुत सादी, पर जानलेवा सच्चाई लिए हुए 'जियो और जीने दो'। है। ये जीने का पासवर्ड है। और आज के दौर में ये पासवर्ड सबसे ज्यादा जरूरी हो गया है।

1. **जियो — अपनी कहानी के हीरो खुद बनो**
'जियो' का मतलब लड़क लड़क बनकर दिखावा करना नहीं है। रियल में जीना है।

दिवकरत ये है कि हमने अपनी जिंदगी जीना बंद करके "दूसरों को दिखाना" शुरू कर दिया है। "लोग क्या कहेंगे" — ये चाच शब्द आज की सबसे बड़ी जेल बन गए हैं।

कॉलेज का लड़का गाना गाना चाहता है, पर घर वाले कहते हैं "सरकारी नौकरी कर ले"। 32 की लड़की पीपेचड़ी करना चाहती है, पर ताते आते हैं "उम्र निकल रही है, शादी कर लो"। कोई आर्टिस्ट बनना चाहता है तो कहा जाता है "इसमें पैसा नहीं है"। नतीजा जो 7 40 की उम्र में आकर लगता है कि जिंदगी तो जी ही नहीं, बस गुजारी है।

'जियो' का पहला सबक है अपनी औकात नहीं, अपनी चाहत पहचानो। हर इंसान की घड़ी अलग चलती है। सचिन 16 में इंटरनेशनल खेलने लगा, अमिताभ बच्चन को पहचान 30 के बाद मिली। वरिष्ठ नागरिक 60 में बिजनेस शुरू कर रहे हैं। कोई भी टाइमलाइन गलत नहीं है। तुम्हारी रस सिर्फ तुमसे है।

दूसरा सबक परफेक्शन का भूत उतार दो। इंस्टाग्राम ने हमें यकीन दिला दिया कि दुनिया में सब 24 घंटे खुश, फिट और अमीर हैं। सच ये है कि हर घर में कोई न कोई टूटा खाब है। कर्ज है, बीमारी है, अकेलापन है। जब तक तुम अपने दाग छिपाओगे, तुम खुद से दूर रहोगे। खुद से दोस्ती करो — कमियाँ समेत। क्योंकि जो खुद से मोहब्बत नहीं कर सकता, वो दुनिया को क्या देगा?

'जियो' का मतलब है गलती करने की आजादी, गिरकर उठने की हिम्मत, और बिना माफी मांगे अपनी पसंद की जिंदगी जीना।

2. **जीने दो — दुनिया सिर्फ तुम्हारे रंग की नहीं**
अब सिके का दूसरा पहलू — जो 'जियो' से भी कठिन है। खुद को संभालना आसान है, दूसरों को उनकी मजी से जीने देना मुश्किल। हमारा भारत 145 करोड़ कहानियों का देश है।

संस्कृति का दबाव रहता है। ऐसे माहौल में चिकित्सा सेवा और व्यापार के बीच की रेखा धुंधली होने लगती है। समस्या केवल डॉक्टरों की भी नहीं है। स्वास्थ्य व्यवस्था का पूरा ढाँचा कई बार ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करता है जहाँ मानवीय संवेदनाएँ धीरे-धीरे थकने लगती हैं। लगातार तनाव, मुकदमों का डर, हिंसा की घटनाएँ, सोशल मीडिया पर बिना तथ्य के आरोप और हर परिस्थिति में चमत्कार की अपेक्षा—ये सभी बातें डॉक्टरों पर अतिरिक्त मानसिक दबाव डालती हैं। जब समाज और व्यवस्था दोनों किसी पेशे को लगातार तनाव में रखें, तो उसका असर व्यवहार पर पड़ना स्वाभाविक है। इसके बावजूद यह स्वीकार करना होगा कि कुछ डॉक्टरों द्वारा अनावश्यक जाँचें लिखना, कमीशन आधारित रेफरल देना, अत्यधिक शुल्क लेना या मरीज के साथ असमानजनक व्यवहार करना किसी भी परिस्थिति में उचित नहीं ठहराया जा सकता। चिकित्सा केवल ज्ञान का नहीं, बल्कि विश्वास का भी पेशा है। एक बार यदि यह विश्वास टूटता है तो उसकी भरपाई अत्यंत कठिन होती है। सबसे बड़ी कमी शायद हमारी चिकित्सा शिक्षा में नैतिक प्रशिक्षण की है। मेडिकल विद्यार्थियों को शरीर की संरचना, रोगों की पहचान और आधुनिक उपचार पद्धतियाँ तो विस्तार से पढ़ाई जाती हैं, लेकिन करुणा, संवाद, सहानुभूति और चिकित्सा नैतिकता को उतनी प्राथमिकता नहीं मिलती, जितनी मिलनी चाहिए।

(यह लेखक के निजी विचार हैं)

जियो और जीने दो: एक बेहतर दुनिया का पासवर्ड

कोई सुबह 4 बजे उठता है, कोई रात 2 बजे सोता है। कोई शाकाहारी है, कोई मांसाहारी। कोई मंदिर जाता है, कोई मस्जिद, कोई गुरुद्वारा, कोई कहीं नहीं। कोई जींस पहनता है, कोई धोती, कोई कुर्ता।

पॉप्लम तब आती है जब हम चाहते हैं कि पूरी दुनिया हमारी फोटो कॉपी बन जाए।

सोचिए अगर बगोचे में सिर्फ गुलाब हों तो ? बोरिंग। चमेली, गेंदा, सूरजमुखी से ही तो रंग बनता है। पर हम व्हाट्सएप यूनिवर्सिटी से डिग्री लेकर जज बन जाते हैं।

“इस उम्र में पढ़ाई ?”
“शादी नहीं की, कोई कमी होगी”
“इतना कमाता है फिर भी किराये पर है”

ये तीर रोज किसी न किसी को लहलुहान करते हैं। 'जीने दो' का मतलब है अपनी नाक दूसरों की थाली से बाहर रखना। जब तक कोई काफ़ूत नहीं तोड़ रहा, किसी को नुकसान नहीं पहुंचा रहा, तब तक उसे उसकी जिंदगी जीने दो।

असहमति रखो, पर अदब से। बहस करो, पर इज्जत से। नफरत मत करो।

3. **क्यों जरूरी है ये मंत्र ? क्योंकि हम अंदर से टूट रहे हैं...** आंकड़े डगते हैं। भारत में हर 7 में से 1 व्यक्ति तनाव, डिप्रेशन या एंजायटी से जूझ रहा है। तलाक 20 साल में 50% बढ़े। सड़क पर रोड रेज, घर में चिड़चिड़ापन, ऑनलाइन गाली-गलौज — ये सब क्यों ?

क्योंकि हमने 'जियो और जीने दो' भुला दिया। जब हम खुद को हर पल प्रुव करने में लगते हैं तो बर्नआउट होता है। जब हम दूसरों को कंट्रोल करने लगते हैं तो रिश्ते घुटते हैं।

इतिहास गवाह है। हर युद्ध, हर झगड़ा एक ही सोच से शुरू होता है: "मैं ही सही हूँ, बाकी सब गलत"। हिटलर से लेकर आज के ट्रोल तक, सबने 'जीने दो' का गला घोट।

इसके उलट जल सह-अस्तित्व आया तो चमत्कार हुए। भारत देखिए — इदने धर्म, भाषा, पहनावा, फिर भी एक तिरंगा। सिलिकॉन वैली देखिए, दुनिया भर के दिमाग क्योंकि वहाँ टैलेंट को पासपोर्ट से नहीं तोला जाता।

शांति तभी आती है जब हम ये मान लें कि "तुम्हारी जीत मेरी हार नहीं है"।

4. **शुरुआत कहाँ से ? घर से — 5 छोटे नियम**
बड़ी बातें सुनकर लगता है ये सरकार का काम है। नहीं। शांति का ठेका संसद में नहीं, आपके ड्राइंग रूम में साइन होता है।

» **पहले सुनो, फिर बोलो...** जब बच्चा, साथी या माँ-पाप बात करें तो फोन नीचे रख दो। 80% झगड़े सिर्फ इसलिए हैं क्योंकि हमने सुना ही नहीं।
» **बिन मांगी सलाह मत दो ...** हर कोई समझदार है। जब तक कोई पूछे नहीं, ज्ञान का तंगर मत लगाओ।

» **माफ करना सीखो...** दूसरों को भी, और खुद को भी। परफेक्ट कोई नहीं। उम्मीद कम होगी तो दुख भी कम होगा।

» **डिजिटल उपवास...** दिन में 1 घंटा बिना स्क्रीन। तुलना का बुखार अपने आप उतर जाएगा।

» **थैक्यू और इज्जत प्री है...** सुनो वाले, डिलीवरी बॉय, सिक्योरिटी गार्ड — एक मुस्कान और धन्यवाद, किसी का दिन बना देता है।

(यह लेखिका के निजी विचार हैं)

बूंद-बूंद से सुरक्षित होगा कल...

और तालाबों में भरपूर जल देखा, हमारे माता-पिता ने कुओं और हैंडपंपों से पानी प्राप्त किया, हमने नलों के माध्यम से जल की उपलब्धता का अनुभव किया और यदि जल संरक्षण के प्रति हमारी लापरवाही जारी रही, तो आने वाली पीढ़ियाँ शायद केवल बोतलबंद पानी पर निर्भर रहने को विवश होंगी। यह स्थिति हमारे लिए गंभीर चेतावनी है।

आज भारत की जनसंख्या 140 करोड़ से अधिक है और आने वाले वर्षों में इसके और बढ़ने का अनुमान है। जिस गति से जनसंख्या बढ़ रही है, उसी गति से जल की माँग भी बढ़ती जा रही है। दूसरी ओर, पृथ्वी पर उपलब्ध कुल जल में से पीने योग्य मीठा जल बहुत सीमित है। ऐसे में जल का विवेकपूर्ण उपयोग समय की सबसे बड़ी आवश्यकता बन गया है।

भारत विश्व के लगभग 25 प्रतिशत भूजल का उपयोग करता है। देश में कुल सिंचाई का लगभग 60 प्रतिशत ताता पेयजल की 80 से 90 प्रतिशत आवश्यकता भूजल से पूरी होती है। लगातार बढ़ते दोहन के कारण भूजल स्तर तेजी से नीचे जा रहा है, जिससे भविष्य में जल संकट और गहरा सकता है। नीति आयोग की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2030 तक भारत में जल की माँग उपलब्ध जल संसाधनों की तुलना में कहीं अधिक हो सकती है। यदि समय रहते जल संरक्षण के प्रभावी उपाय नहीं किए गए, तो देश के अनेक हिस्सों में गंभीर जल संकट उत्पन्न होने की आशंका है।

दुर्भाग्य की बात है कि आज मनुष्य प्रकृति के इस अमूल्य उपहार का सम्मान करने के बजाय

उसका अंधाधुंध दोहन कर रहा है। घरों, उद्योगों और कृषि क्षेत्रों में जल की बर्बादी लगातार बढ़ रही है। वर्षा जल का पर्याप्त संरक्षण नहीं हो रहा है, नदियाँ और जलाशय प्रदूषित हो रहे हैं तथा भूजल का अत्यधिक दोहन भविष्य के लिए खतरे की घंटी बन चुका है।

अब समय आ गया है कि हम जल के महत्व को समझें और उसकी प्रत्येक बूंद को बचाने का संकल्प लें। वर्षा जल संचयन को बढ़ावा देना, जल स्रोतों का पर्याप्त संरक्षण करना लोगों में जल संरक्षण के प्रति जागरूकता फैलाना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। याद रखें, जल है तो कल है। यदि आज हमने जल की रक्षा नहीं की, तो आने वाली पीढ़ियाँ हमें कभी भी क्षान नहीं करेंगी।

(यह लेखक के निजी विचार हैं)

रियलिटी शो

लॉक अप 2 में नया धमाका!

अपूर्वा 'द रेबेल किड'
की वाइल्डकार्ड एंट्री

रियलिटी शो 'लॉक अप: सच या सज़ा' (सीज़न 2) में ड्रामा और एंटरटेनमेंट का तापमान अब और बढ़ने वाला है। जब शो के कंटेस्टेंट्स अपने-अपने ग्रुप में धीरे-धीरे सेटल हो रहे थे, तभी मशहूर डिजिटल कंटेंट क्रिएटर अपूर्वा मुखिजा, जिन्हें सोशल मीडिया पर 'द रेबेल किड' के नाम से जाना जाता है, ने शो में वाइल्डकार्ड कंटेस्टेंट के तौर पर धमाकेदार एंट्री कर ली है। नेटफ्लिक्स के इस हिट रियलिटी शो को फराह खान होस्ट कर रही हैं, जो नए प्रोमो में अपूर्वा को घर के भीतर लाती हुई नज़र आ रही हैं।

अपूर्वा मुखिजा वाइल्डकार्ड कंटेस्टेंट के तौर पर 'लॉक अप 2' में शामिल हुईं... नेटफ्लिक्स के 'लॉक अप सीज़न 2' के नए प्रोमो में होस्ट फराह खान, अपूर्वा को वाइल्डकार्ड कंटेस्टेंट के तौर पर घर में लाती हुई दिख रही हैं। एंट्री के समय ही उनकी श्रेया कालरा से बहस होती दिख रही है। शो में शामिल होने के बारे में बात करते हुए, अपूर्वा ने माना कि उन्होंने कभी कोई और 'कैप्टिव रियलिटी शो' (बंद जगह पर होने वाला रियलिटी शो) करने का प्लान नहीं बनाया था, लेकिन 'लॉक

अप' के लिए खुद को रोक नहीं पाईं। सच कहूं तो मैं बहुत नर्वस हूँ। मैंने खुद से वादा किया था कि मैं कभी कोई और 'कैप्टिव रियलिटी शो' नहीं करूंगी, लेकिन मैं यहां हूँ। सच तो यह है कि मुझे 'लॉक अप' की लत लग गई है। मैंने उस शो के अलावा जिसमें मैं खुद शामिल थी, कभी कोई रियलिटी टीवी शो फॉलो नहीं किया, लेकिन इस शो ने मुझे और मेरे सभी दोस्तों को पूरी तरह से अपनी ओर खींच लिया है। हम एपिसोड रोकते हैं, स्क्रीनशॉट लेते हैं, मीम्स बनाते हैं और हर कंटेस्टेंट की जर्नी को बारीकी से समझते हैं। मेरी पूरी सोशल मीडिया फीड 'लॉक अप' से भरी हुई है। उन्होंने यह भी बताया कि वह घर के सभी लोगों की फैन नहीं हैं और कुछ कंटेस्टेंट्स के बारे में उनकी राय पहले से ही साफ है। मैं झूठ नहीं बोलूंगी, मुझे शिल्पा शिंदे पसंद नहीं हैं। पामेला सेरेना को देखना मुझे सच में अच्छा लगा है। उन्होंने शो में खुद को बहुत ही मानवीय रूप में पेश किया है। हालांकि, मैं घर में दोस्त बनाने या रिश्ते बनाने नहीं जा रही हूँ। मैं यहां गेम खेलने आई हूँ।

'सर्जरी के बाद घर लौटना सबसे मुश्किल रहा', अमिताभ ने साझा की भावुक पोस्ट

बॉलीवुड के महानायक अमिताभ बच्चन ने हाल ही में हुई अपनी सर्जरी के बाद स्वास्थ्य से जुड़ी एक बेहद दिल को छू लेने वाली जानकारी अपने फैंस के साथ साझा की है। 83 वर्षीय दिग्गज अभिनेता ने बताया कि अस्पताल से छुट्टी मिलने और घर लौटने के बाद उनकी असली शारीरिक और मानसिक परीक्षा शुरू हुई है। अमिताभ बच्चन ने 21 जुलाई को सुबह अपने आधिकारिक ब्लॉग पर एक पोस्ट के जरिए ठीक होने (रिकवरी) की इस प्रक्रिया में आने वाली चुनौतियों का जिक्र किया। बच्चन ने कहा कि हालांकि उनकी सर्जरी और अस्पताल में रहने के दौरान कुशल डॉक्टरों और मेडिकल स्टाफ की टीम ने उनकी देखभाल की, लेकिन घर लौटने के बाद सामान्य जीवन में ढलना इस सफर का सबसे मुश्किल हिस्सा साबित हुआ है।